Sanskrit
Explore–Journal of Research for UG and PG Students
ISSN 2278 – 0297 **(Print)**
ISSN 2278 – 6414 **(Online)**
© Patna Women's College, Patna, India
http://www.patnawomenscollege.in/journal

जन-स्वास्थ्य में आयुर्वेद की भूमिका

संगीता राय • सौम्या कुमारी • प्रिया कुमारी • स्मिता कुमारी

Received : December 2010
Accepted : February 2011
Corresponding Author : Smita Kumari

Abstract : *आयुर्वेद विश्व का प्राचीनतम चिकित्सा विज्ञान है। पूर्णरूपेण विकसित इस चिकित्सा-पद्धति का लक्ष्य रोगों को दूर करना और रोगी न होने के उपायों का निर्देश करना है। इसमें मनुष्य को रोगमुक्त रखने के लिए आदर्श जीवन शैली, उत्तम दिनचर्या और समुचित आहार-विहार का निर्देश है। वैदिक काल में ही आयुर्वेद का उद्‌भव एवं विकास हो चुका था। परवर्ती साहित्य चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा अष्टाङ्गहृदय आदि इसके आधार ग्रन्थ हैं। प्रस्तुत शोध-प्रकल्प का उद्देश्य है आयुर्वेद के ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए इसके महत्व को स्थापित करना। आयुर्वेद में वर्णित वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों, फल, फूल, सब्जियों तथा मसालों के औषधीय महत्व का भी वर्णन किया गया है।*

आयुर्वेद की लोकप्रियता भारत ही नहीं पूरे विश्व में बढ़ी है। लेकिन इसके विकास की राह में अनेक चुनौतियाँ और समस्याएँ भी हैं। इनके निदान के लिए सुझाव दिए गए हैं।

शब्द कुँजी: *आयुर्वेद, अष्टाङ्ग, स्वास्थ्य-रक्षा प्रणाली, औषधियाँ।*

संगीता राय
बी० ए०-तृतीय वर्ष (2008–2011), संस्कृत (प्रतिष्ठा),
पटना वीमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

सौम्या कुमारी
बी० ए०-तृतीय वर्ष (2008–2011), संस्कृत (प्रतिष्ठा),
पटना वीमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

प्रिया कुमारी
बी० ए०-तृतीय वर्ष (2008–2011), संस्कृत (प्रतिष्ठा),
पटना वीमेंस कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार, भारत

स्मिता कुमारी
सहायक प्राध्यापक-सह-अध्यक्षा, संस्कृत विभाग, पटना वीमेंस कॉलेज,
बेली रोड, पटना – 800 001, बिहार, भारत
E-mail : ssprasad5@yahoo.com

परिचय :

आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा-पद्धति की अति प्राचीन विद्या है। आयुर्वेद 'आयुस् तथा वेद' इन दो शब्दों के मेल से बना है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- **आयुषो वेदः आयुर्वेदः** अर्थात् आयु (जीवन) से संबंधित सर्वाङ्गीण ज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं। स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगी के रोगों का उपचार करना ही इसका प्रयोजन है- **"प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च।"** अपनी इसी आधारभूत विशेषता के कारण यह समसामयिक चिकित्सा प्रणाली में वैकल्पिक पद्धति के रूप में समादृत है। इसमें मनुष्य को रोगों से मुक्त रखने के लिए दवाओं के साथ-साथ आदर्श जीवन शैली, समुचित दिनचर्या,

उत्तम एवं पौष्टिक आहार तथा ऊर्जात्मक कार्यशैली का निर्देश किया गया है। इसमें जड़ी-बूटियों, वनस्पतियों, खनिजों आदि का औषधी के रूप में प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेदिक औषधियाँ व्यक्ति में जीवनी शक्ति का विकास कर उसकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करती हैं।

आयुर्वेद के उद्भव एवं विकास की अत्यंत प्राचीन परम्परा (द्वितीय शताब्दी ई॰ पू॰ से 10वीं शताब्दी तक) प्राप्त होती है। इस कालावधि में विभिन्न प्रकार के रोगों की चिकित्सा के लिए अनेक औषधियों का निर्माण और शल्य क्रिया का विकास हुआ।

साहित्यावलोकन :

आयुर्वेद के उद्गम स्थल हमारे वेद हैं। वैदिक काल में ही आयुर्वेद का विकास हो चुका था और ऋषियों ने शरीर विज्ञान का गहन अध्ययन कर रोगों के कारण और निदान के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया था। अथर्ववेद में शरीर से पृथक् हुई अस्थियों को रथ के विभिन्न अंगों के सदृश जोड़कर रथ की तरह मनुष्य को स्वस्थ बनाने वाला आदेश प्राप्त होता है-

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान।
ऋभू रथस्येवाङ्गानि सं दधत्पुरुषा परुः॥

(अथर्व॰सं॰-4/12/7)

अश्विनी कुमारों के द्वारा दध्यङ् आथर्वण ऋषि के सिर को काटकर अश्व सिर आरोपित कर पुनः ऋषि का सिर प्रत्यारोपित करना, दीर्घतमा ऋषि के कटे हाथ, पैर तथा सिर को नया बनाना (ऋग्वेद सं॰-1/58/4), शिव के द्वारा गणेश जी के कण्ठ पर हाथी का मुण्ड तथा दक्ष के कण्ठ पर बकरे का मुण्ड लगाना, देवकी के गर्भ को रोहिणी में स्थापित करना, वृद्ध च्यवन ऋषि को नवयौवन दान देना आदि कितने ही उदाहरण हैं जिससे भारतीय चिकित्सा के चरमोत्कर्ष का ज्ञान होता है। ऋग्वैदिक चिकित्सा विधियों में सूर्य-चिकित्सा, वायु-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, अग्नि-चिकित्सा, यज्ञ-चिकित्सा, मन्त्र- चिकित्सा, हस्त-स्पर्श चिकित्सा (Mesmerism), स्वापन-विद्या (Hypnotism) तथा शल्य-चिकित्सा का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना गया है। अथर्ववेद में विस्तार से चिकित्सा का वर्णन हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय आयुर्वेद के सैद्धान्तिक और क्रियात्मक दोनों पक्षों का काफी विकास हो चुका था। ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों में भी आयुर्वेद के तत्व प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद की काश्यप संहिता में आयुर्वेद का उद्भव एवं विकास इस प्रकार वर्णित है- ब्रह्मा ने आयुर्वेद की रचना कर इसे दक्ष प्रजापति और भास्कर को प्रदान किया। दक्ष प्रजापति ने अश्विनी कुमारों को तथा अश्विनी कुमारों ने देवराज इन्द्र को तथा इन्द्र ने विभिन्न ऋषियों को यह ज्ञान प्रदान किया। पृथ्वी पर भारद्वाज ऋषि ने यह ज्ञान प्रसारित किया। उनके शिष्य पुनर्वसु आत्रेय ने आत्रेय सम्प्रदाय की नींव डाली। आचार्य चरक उन्हीं की शिष्य परम्परा में थे, जिन्होंने चरक-संहिता की रचना की।

दूसरा सम्प्रदाय धन्वन्तरि सम्प्रदाय था । दिवोदास धन्वन्तरि के शिष्यों में सुश्रुत प्रमुख थे जिन्होंने 'सुश्रुत-संहिता' की रचना की। चरक एवं सुश्रुत संहिताओं में आयुर्वेद का सुव्यवस्थित रूप मिलता है। चरक-संहिता में काय-चिकित्सा (General Medicine) एवं सुश्रुत संहिता में शल्य-तंत्र (Surgery) का वर्णन है। दोनों ग्रन्थ चिकित्सा-जगत् की महान् उपलब्धियाँ हैं। द्विवेदी बन्धु लिखते हैं-

The most authentic compilation of his techings and work is presently available in a treatise called Sushruta Samhita. This contains 184 chapters and description of 120 illnesses, 700 medicinal plants, 64 preparations from mineral sources and 57 preparations based on animal sources (*Dwivedi et. al., 2007, 243-244)*.

अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थों में वाग्भट् कृत अष्टांगहृदय है जिसमें आयुर्वेद के अष्टाङ्गों का वर्णन है। अन्य ग्रन्थों में माधव-निदान, शार्ङ्गधर-संहिता, भाव-प्रकाश आदि महत्वपूर्ण हैं जो आयुर्वेदीय चिकित्सा को अमर एवं यशस्वी बनाने में अग्रसर रहे। इस तरह वैदिक काल से आज तक यह परम्परा जीवित है और नित्य नए-नए प्रयोग हो रहे हैं।

उद्देश्यः

आयुर्वेद हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में एक अहं भूमिका निभाता है। इसकी स्वास्थ्यवर्द्धक क्षमता तथा उपयोगिता को देखते हुए हमने इसे अपने शोध का विषय बनाया। प्रस्तुत शोध-प्रकल्प का उद्देश्य है-

- आयुर्वेद के इतिहास एवं सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए इसके महत्व को स्थापित करना।
- जन-स्वास्थ्य में आयुर्वेदिक औषधियों एवं जड़ी-बूटियों की भूमिका का अध्ययन।
- आयुर्वेद में वर्णित वनस्पतियों, फल, फूल, सब्जियों तथा मसालों के औषधीय महत्व का विवेचन।
- आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग रोगी के साथ-साथ स्वस्थ व्यक्ति भी कर सकते हैं। क्योंकि, जहाँ यह रोगी के रोगों को दूर करता है वहीं स्वस्थ व्यक्ति के पोषण सहित प्रतिरोधी शक्ति का विकास भी करता है। अतः इसकी उपयोगिता के विषय में लोगों को अवगत कराना ।

प्रयोग-विधि (Methodology) :

जन-स्वास्थ्य में आयुर्वेद की भूमिका शीर्षक शोध-प्रकल्प का प्रतिवेदन (Report) तैयार करने के लिए हमने प्राथमिक (Primary) एवं द्वितीयक (Secondary) दोनों विधियों का प्रयोग किया है।

प्राथमिक विधि के अंतर्गत पटना के विभिन्न क्षेत्रों के 30 व्यक्तियों का प्रश्नावली के आधार पर साक्षात्कार लिया गया।

द्वितीयक विधि के अंतर्गत विभिन्न पुस्तकों, शोधपत्रों समाचारपत्रों, पत्रिकाओं एवं इंटरनेट की सहायता ली गई है।

परिणाम एवं विवेचन :

साक्षात्कार के दौरान सामने आये परिणामों को निम्नलिखित तालिका एवं चार्ट के द्वारा प्रदर्शित किया गया है-

1. दवाएँ महँगी	80%
2. दवाओं की गुणवत्ता का स्तर अच्छा	85%
3. दवाओं से लाभ हुआ है	90%
4. प्रयोग से संतुष्ट हैं	95%
5. वनस्पतियों के औषधीय गुणों की जानकारी है	60%
6. आयुर्वेदिक सौन्दर्य प्रसाधनों का सेवन	85%
7. आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों से परिचित हैं	50%
8. हानिकारक तत्वों का इस्तेमाल	60%
9. सरकार की जिम्मेदारी	80%

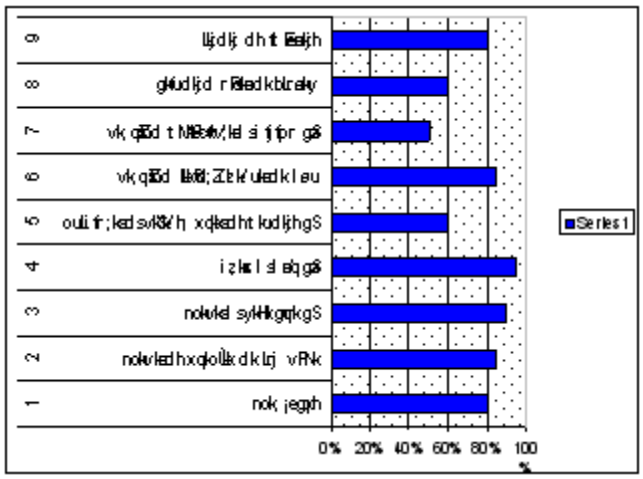

आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त :

पंचभूत सिद्धान्त : यह आयुर्वेद का प्रमुख सिद्धान्त है *(Chopra 2003, 75-83)*। इसके अनुसार विश्व के सभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म जड़-चेतन पदार्थों के साथ-साथ हमारा शरीर भी पंचभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी) से निर्मित है (सुश्रुत-संहिता-5/3)। इनमें वायु, अग्नि और जल क्रियाशील हैं। पञ्चभूत शरीर को भौतिक आधार प्रदान करने वाले भौतिक संघटक (Physical entity) हैं।

त्रिदोष : मानव शरीर के तीन दोष- वात, पित्त और कफ में इन्हीं की प्रधानता होती है। त्रिदोष शरीर के जैविक संघटक (Biological entity) हैं। त्रिदोष की विषमता ही रोगोत्पत्ति का कारण है। दोषों में समता स्थापित करना ही चिकित्सा का मूल है।

सप्तधातु : शारीरिक संरचना में सप्त धातुओं का विशेष स्थान है। केवल सामान्य भावों (द्रव्य, गुण तथा कर्म) के सेवन से धातु दोष की वृद्धि होकर धातु वैषम्य हो जाता है जो रोग का कारण होता है।

सामान्य-विशेष-सिद्धान्त : केवल विशेष भावों का सेवन भी धातु-वैषम्य का कारण बनकर रोग उत्पन्न करता है। यह सामान्य-विशेष-सिद्धान्त है जो आयुर्वेदिक चिकित्सा का मूल है (चरक-संहिता, 9/4) ।

षड्रस : रस चिकित्सा का प्रमुख अङ्ग है। मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु और कषाय- ये षड्रस हैं। हमारे आहार में इन रसों का उचित संतुलन होना चाहिए। मधुर, अम्ल और लवण रस मिलकर अपने गुणों के सामर्थ्य से पित्त को घटाते हैं जबकि अन्य रस उसे बढ़ाते हैं। इसी

प्रकार तिक्त, कटु, कषाय तथा कषाय, तिक्त और मधुर रस मिलकर क्रमशः वात तथा कफ को घटाते हैं।

आयुर्वेद में पूर्णतः स्वस्थ व्यक्ति वही है जिसके त्रिदोष संतुलित हों, अग्नि, धातु सभी सम हों तथा जिसकी आत्मा, मन व इन्द्रियाँ प्रसन्न एवं संतुष्ट हों। शरीर के साथ-साथ अन्तःकरण का भी स्वस्थ होना आवश्यक है। आयुर्वेद में केवल शरीर के रोगों को ही रोग नहीं कहा जाता है, अपितु शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा के दुःखों को भी रोग कहते हैं। आयुर्वेद में क्षुधा, पिपासा, जरा आदि को भी रोग कहा जाता है। व्याधि एवं चिकित्सा का वास्तविक क्षेत्र पञ्चभौतिक शरीर एवं आत्मा को समुदायरूप चिकित्स्य पुरुष माना गया है।

आयुर्वेद की आठ शाखाएँ हैं *(Chopra, 2003, 75-83)*।

अष्टाङ्ग आयुर्वेद

सभी प्रकार के रोगों का निराकरण इन्हीं आठ अङ्गों में विभक्त करके किया जाता है-

अष्टाङ्ग आयुर्वेद	रोग-निवारण
शल्य तंत्र	इसके अन्तर्गत दूषित व्रण, अन्तः शल्य, गर्भशल्य आदि को निकालने के लिए शस्त्र, क्षार और अग्नि के प्रयोग से किए जाने वाले शल्य-कर्मों का वर्णन है।
शालाक्य	कान, आँख, नाक, मुख आदि गले के ऊपर के अंगों की चिकित्सा के लिए शलाका का प्रयोग होता था।
काय चिकित्सा	सम्पूर्ण शरीर और जठराग्नि से संबंधित इस शाखा में शरीर के सर्वांग में होने वाले ज्वर, रक्त, पित्त, शोथ, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ एवं अतिसार आदि रोगों की चिकित्सा का विधान है (अथर्व०सं०-9/8/1-21)।
कौमारभृत्य	इस शाखा में गर्भाधान, गर्भ की पुष्टि, गर्भ की रक्षा, सुख प्रसव, जन्मकाल के हानिकारक प्रभावों को दूर करना, शिशु का भरण-पोषण, धात्री परीक्षा एवं शिशु रोगों के उपचार का वर्णन है (अथर्व०सं०-5/25/1-3, 6/81/1-3, 6/17/1-4, 1/11/1-6, 6/110/1-3)।
भूत विद्या	इसमें शान्तिकर्म के द्वारा मानसिक रोगों की चिकित्सा का वर्णन है।
अगदतंत्र	इसके अन्तर्गत सर्प, कीट आदि के दंश से उत्पन्न विष तथा नानाविध स्थावर विषों की शान्ति हेतु उपाय वर्णित हैं (अथर्व०सं०-4/6/1-8, 4/7/1-7, 7/88/1)।
रसायनतन्त्र	मनुष्य का शरीर सप्तधातुओं से निर्मित है- रक्त, मांस, मज्जा, मेद, अस्थि एवं शुक्र। इनका एकीकृत नाम रस है। जिन औषध द्रव्यों के सेवन से शरीर में उत्तम रस, रक्त आदि की उपलब्धि होती है उन्हें रसायन कहते हैं। इस शाखा में वयःस्थापन, आयुष्य, बल और ओज की वृद्धि के लिए व्याधियों को दूर करने के उपाय वर्णित हैं (अथर्व०सं०-3/7/5-7, 4/33, 6/22/24)।
वाजीकरण	इसमें क्षीण वीर्य दोष को दूर करने, शुक्र-संशोधन, वृद्धावस्था दूर करने एवं अश्व सदृश पौरुष शक्ति उत्पन्न करने का विवेचन है (अथर्व०सं०-4/4/8)।

दिव्य एवं महत्वपूर्ण औषधियाँ-

ऋग्वेद के ओषधि-सूक्त (ऋषि, 2004, 10/97) में सभी दुःखों को विनष्ट करके ऊर्जा प्रदान करनेवाली औषधियों का वर्णन है। अथर्ववेद में भी औषधी द्वारा अमृतत्व तथा ब्रह्मत्व की प्राप्ति कही गई है (अथर्व०सं०-1/81/1-3)। इनके प्रयोग से स्मृति एवं बुद्धि का विकास होता है, शारीरिक पुष्टि तथा

आरोग्य की भी प्राप्ति होती है (सेठ, 2001, 55-85)। इनके अतिरिक्त रोजमर्रा में प्रयुक्त होने वाले फल, फूल, सब्जियों, मसालों आदि में भी औषधीय गुण सन्निहित हैं। आयुर्वेद में असंख्य दिव्य औषधियों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिनके प्रयोग से आरोग्य की प्राप्ति होती है, शरीर पुष्ट बनता है तथा स्मृति व बुद्धि का विकास होता है। **महर्षि च्यवन** ने जिन औषधियों का सेवन कर पुनर्जीवन प्राप्त किया था, उनके नाम हैं:-

जीवक, ऋषयक, मेदा-महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपणी, मांसपर्णा, जीवन्ती और मुलहठी, ऋद्धि तथा वृद्धि। कुछ औषधियों का वर्णन निम्नलिखित है-

औषधी	**औषधीय गुण**
ऐन्द्री	इसका प्रयोग पेट की शुद्धि एवं मूढ़ गर्भ को निकालने में किया जाता है। उदर-संस्थान के सभी रोगों पर इसका प्रभाव हितकारी है। पित्त की विकृति में भी यह लाभदायक है।
ब्राह्मी	इसका उपयोग मस्तिष्क रोग एवं वात नाड़ी की विकृति में हितकर है। यह परम रसायन है तथा कुष्ठ, प्रमेह, रक्तविकार, हृदय रोग एवं पाण्डु रोग में विशेष लाभदायक है।
शंखपुष्पी	यह मेधा के लिए लाभकारी है। यह मानसिक विकारों और अपस्मार को नष्ट करती है।
जीवन्ती(मधुश्रवा)	यह बलवर्द्धक, नेत्रों के लिए परम हितकारी, दस्त बाँधनेवाली शीतवीर्य औषधी है।
ब्रह्मदण्डी	यह उष्णवीर्य औषधि है जो वायु एवं कफ को नष्ट करती है।
रुद्रवन्ती (संजीवनी)	यह क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, रक्तपित्त एवं कृमिरोग में उपयोगी है। यह वृद्धावस्था को समाप्त कर नवयौवन प्रदान करती है।
तुलसी	इसके प्रयोग से सफेद दाग और कुष्ठ रोगों में अद्भुत लाभ होता है। इसके पत्तों में कैंसर निरोधक तत्व 'Micastrin' होता है।
बेल	यह पाचन संबंधी विभिन्न रोगों में अति लाभकारी है।
जीरा	यह कफ-वात-शामक तथा पित्तवर्द्धक है।
हल्दी	यह जीवाणु प्रतिरोधी (Antibiotic) है जो खून को साफ कर उसे गर्मी प्रदान करती है और नए तंतुओं का निर्माण करती है *(Tilak et., al., 2004, 18(10)*।
लहसुन	यह उच्च रक्तचाप नियंत्रक और रोगाणु प्रतिरोधी है।
अजवायन	इसके प्रयोग से ड्रग्स एवं शराब की लत छूट जाती है।
आँवला	यह खून में लाल कणों एवं लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या बढ़ाता है। यह दाँत, आँख, बाल एवं नाखूनों को शक्ति प्रदान करता है।
मेथी	यह शरीर से अवशिष्ट तत्वों को बाहर निकालकर इसे पूरी तरह विषैले तत्त्वों से रहित बनाती है।
मुलेठी	यह जमे हुए कफ को तरल कर शरीर से बाहर निकालता है। यह पाचन एवं जठर रोगों में भी सहायक है।
घृतकुमारी	यह त्वचा संबंधी सभी रोगों के लिए, जिगर के लिए तथा आँत व पीलिया रोग में लाभदायक है।
पुनर्नवा	यह रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा को बढ़ाता है और शरीर के सूजन को कम करता है।
अश्वगंधा	यह बच्चों के विकास को तेज करती है और युवाओं में बुढ़ापा आने पर रोक लगाती है।
अर्जुन	यह हृदय के लिए अत्यंत लाभदायक है। यह हृदय की रक्तवाहिनी शिराओं को मजबूती प्रदान करता है तथा खून में थक्का जमने की समस्या से छुटकारा दिलाता है *(Millar, 1998, 3(6)*। इसमें अत्यधिक मात्रा में कैल्शियम होता है।

महत्वपूर्ण चिकित्सा विधियाँ :

आयुर्वेद में आहार, आचार और विहार को संतुलित प्रयोग स्वास्थ्य रक्षा के लिए आवश्यक माना गया है। यदि कदाचित् मिथ्या आहार-विहार के कारण रोग उत्पन्न हो जाएँ तो उनका शमन करके पुरुष को प्राकृत भाव में स्थापित करना आयुर्वेद का द्वितीय प्रयोजन है। इसी कारण चिकित्सा को 'प्रकृतिस्थापन' कहा गया है। इसके लिए औषध, आहार (पथ्य) और विहार की त्रिपुटी का समन्वित प्रयोग किया जाता है। चिकित्सा में दैवव्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय और सत्त्वाजय- इन तीनों उपायों का प्रयोग विहित है, जिससे दोषों का सर्वाङ्गीण शोधन और शमन हो सके। प्रथम दोषों का संशोधन कर फिर संशमन का विधान है। संशोधन में पञ्चकर्म महत्त्वपूर्ण है।

आयुर्वेदिक पंचकर्म *(Sharma, 2003)* का विशेष महत्व है। यह शरीर से विषैले पदार्थों को बाहर निकाल देता है। यह एक प्रकार की संशोधन क्रिया है जो शारीरिक एवं मानसिक विकारों को दूर कर व्यक्ति को स्वस्थ एवं बलिष्ठ बनाती है। इसमें सर्वप्रथम **स्नेहन क्रिया** की जाती है। इसमें रोगी को दवायुक्त घी आदि खिलाया जाता है। **बाह्य स्नेहन** में अलग-अलग बीमारी के लिए भिन्न-भिन्न हर्बल तेलों की मालिश की जाती है। **शिरोधारा** में एक विशेष प्रकार की टोपी सिर में लगाकर उसमें तेल आदि भरकर रखते हैं जिससे आँख, नाक, कान की बीमारी, नसों के रोग, माइग्रेन, नींद न आना, मानसिक रोग एवं बालों के रोगों में लाभ होता है। **अक्षितर्पण** से दृष्टि की कमजोरी दूर होती है। **कर्णपूरणा** से कान के रोगों में लाभ होता है। **पिडिचल** में रोगी के सम्पूर्ण शरीर पर ऊँचाई से तेल डालकर मालिश करने से शियाटिका, जोड़ों का दर्द, Spondilitis, लकवा, मांसपेशियों की शिथिलता आदि दूर हो जाते हैं।

आयुर्वेदिक **रसायन चिकित्सा** उम्र के प्रभाव को कम करने में सहायक तो है ही आचार रसायन के द्वारा सत्य-भाषण, दया, इन्द्रियों की स्थिरता, शान्ति और सद्वृत का पालन कर मानसिक रोगों से दूर रहा जा सकता है। डा॰ सुधा लिखती हैं-

So to prevent early ageing, its ill effects and to promote the quality of ageing one needs the support of Ayurveda in terms of its *Swasthyarakshana* and *rogaprasamana* aspects. Also the virtues of our tradition and culture have essential role in conditioning the behaviour of younger generation so as to make ageing a graceful event of life *(Chilluvari, 2009, 5.)*.

आयुर्वेद के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि इसमें वनस्पतियों पर आधारित इलाज की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदिक दवाओं में पशुओं के उत्पादों जैसे- दूध, हड्डियों आदि भी प्रयोग होता है *(Underwood et. al., 2008)* इसमें धातुओं (Metals), खनिज, तांबे, स्वर्ण आदि का भी उपयोग होता है। आयुर्वेदिक दवाएँ चूर्ण, भस्म, अवलेह, आसव, वटी, सीरप, कास, जूस आदि के रूप में प्रयुक्त होती हैं।

समस्याएँ :

आधुनिक माहौल में आयुर्वेदिक सिद्धान्तों को पूर्णतः अवस्थापित करना एक बहुत बड़ी चुनौती है। आज भी इसकी सफलता के मार्ग में अनेक समस्याएँ हैं:-

- आज बाजार में अनेक प्रकार के उत्पाद भरे पड़े हैं, किन्तु इनकी गुणवत्ता का स्तर निर्धारित करने के लिए मूलभूत जानकारी का अभाव है, जिससे आम आदमी इनके उपयोग से बचना चाहता है।
- रस-शास्त्र के द्वारा तैयार औषधियाँ जिनमें धातु (Metals), खनिज, बहुमूल्य रत्न (Gems) आदि मिलाए जाते हैं, इनके विपरीत प्रभावों को जाँच करने की समस्या बहुत ही महत्वपूर्ण है।
- आयुर्वेदिक औषधियाँ बहुत महँगी भी हैं जिससे यह आम जनता को सुलभ नहीं हैं।
- सरकारी आयुर्वेदिक कॉलेजों में शोध और शिक्षा की समुचित और पर्याप्त व्यवस्था नहीं है।
- अनेक निजी संस्थानों में विभिन्न प्रकार की चिकित्साएँ जैसे पंचकर्म थेरेपी, रसायन चिकित्सा, शोधन, शमन आदि उपलब्ध हैं लेकिन अत्यधिक महँगी होने के कारण जन सामान्य को सुलभ नहीं हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

आयुर्वेद सबों के आरोग्य की कामना करता है। कौमारभृत्य के अंतर्गत यदि शिशु के स्वास्थ्य और उसकी देखभाल का अत्यंत वैज्ञानिक तरीका वर्णित है तो इसमें विभिन्न महिला रोगों एवं उनके ईलाज का भी वर्णन है। आयुर्वेदीय प्रसूति विज्ञान हारमोन असंतुलन, स्वतः हो जाने वाले गर्भपात और महिला रोगों की चिकित्सा में सक्षम है। अनेक आयुर्वेदिक दवाएँ गर्भावस्था के दौरान एकत्रित चर्बी को समाप्त कर मांस-पेशियों को दृढ़ करने में सहायक होती हैं। स्वास्थ्य रक्षा में रसायन और वाजीकरण का भी महत्त्व है। रसायन से सभी धातुएँ पुष्ट होती हैं, जिससे ओज दृढ़ होता है, जो रोगक्षमता का मूल है। जबकि वाजीकरण शुक्र को प्रशस्त बनाता है, जिससे संतान गुण-सम्पन्न होती है। इसकी विभिन्न औषधियाँ हाइपरटेंशन, मधुमेह, मोटापा, हृदय-रोग, पक्षाघात तथा धूम्रपान से होने वाले रोगों जैसे फेफड़े का कैंसर, ब्रौंकाइटिस, श्वास रोग आदि में लाभदायक है। आँवला के साथ विभिन्न औषधियों और जड़ी-बूटियों को मिलाकर तैयार किया गया च्यवनप्राश हमारे आरोग्य की रक्षा करने और रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सक्षम है। इसी प्रकार गोलमिर्च और पीपर के साथ घी का मिश्रण, शीतोपलादि चूर्ण, शहद, तुलसी का काढ़ा आदि खाँसी-सर्दी में आश्चर्यजनक रूप से लाभदायक है। काली मिर्च और पीपर के साथ अदरख का त्रिकटु मिश्रण भूख और पाचन शक्तिवर्द्धक है। यह गैस की बीमारी में लाभदायक है। त्रिफला चूर्ण के भी अनेक फायदे हैं।

आयुर्वेदिक सिद्धान्तों का निर्माण पीढ़ियों से चली आ रही निरीक्षण, मूल्यांकन एवं अनुभव का परिणाम है। अतः आधुनिक युग में इन्हें सर्वग्राह्य बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जाते हैं :-

- आयुर्वेदिक शिक्षा प्रणाली को सबल बनाना होगा और इस क्षेत्र में गहन शोध को प्रश्रय देना होगा।
- औषधियों की क्षमता और गुणवत्ता को सुरक्षित रखने के उपाय व्यापक स्तर पर अपनाने होंगे ताकि नयी तकनीक का प्रयोग कर उनके गुणों को लम्बी अवधि तक सुरक्षित रखा जा सके।
- आयुर्वेदिक दवाएँ सस्ते दर पर उपलब्ध कराने के लिए सरकारी प्रयास की आवश्यकता है।
- रस शास्त्र के अन्तर्गत बने हुए आयुर्वेदिक उत्पादनों में अनेक हानिकारक तत्त्व जैसे धातु (Metals), खनिज, ऑर्सेनिक, शीशा आदि मिलाए जाते हैं। प्राचीन काल में इनका पूर्णरूपेण शोधन और शमन करके ही प्रयोग होता था। आज भी इस तरह की दवाएँ बन रही हैं। इनकी सम्यक् जाँच होनी चाहिए और इन्हें हानिरहित बनाने की दिशा में प्रयास होना चाहिए।
- आयुर्वेदिक उत्पादों के डब्बों पर उसमें प्रयुक्त दवाओं की मात्रा की सूची का होना आवश्यक है।
- विश्वव्यापी हर्बल-औषधी-क्रांति के इस युग में GMP (Good Manufacturing Practices) अपनाने की आवश्यकता है। इसके अन्तर्गत आयुर्वेदिक उत्पादनों की शुद्धता एवं उसकी कम्पनियों या संस्था की जाँच, लिखित रूप में उनकी जानकारी आदि सम्मिलित हैं। आवश्यकतानुसार प्रयोगशालाओं का निर्माण होना चाहिए।
- आवश्यकता है एक ऐसी व्यवस्था के पुनर्निर्माण की जिसके द्वारा सही मायने में आयुर्वेदिक सिद्धान्तों का अध्ययन, शोध और कार्यान्वयन हो सके।

इस प्रकार आयुर्वेद एक संपूर्ण विज्ञान है जो एक विशिष्ट शैली को प्रस्तुत करता है। इसके सिद्धान्त यह बतलाते हैं कि जीवन की प्रत्येक अवस्था में स्वस्थ जीवन कैसे व्यतीत किया जाए। अत्यंत प्राचीन होते हुए भी यह भविष्य के लिए अत्यंत उपयोगी है। इस तकनीकी युग में अस्वास्थ्यकर जीवन शैली एवं आहार से उत्पन्न विकृतियों को दूर करने के लिए यह अन्य समसामयिक चिकित्सा-प्रणालियों से अधिक प्रासङ्गिक है। लेकिन आज भी शिक्षा, शोध, गुणवत्ता-नियंत्रण आदि के क्षेत्र में इसका विकास अधूरा है। इसके लिए जन-जागरुकता के साथ-साथ सुदृढ़ कार्ययोजना, सरकारी सहयोग एवं दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है।

सन्दर्भ-सूची:

शास्त्री, रामकृष्ण (1997), अथर्ववेद संहिता, चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी, 4/12/7.

सायण भाष्य सहित (1933), ऋग्वेद संहिता, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1/58/4.

Dwivedi, Girish; Dwivedi, Shridhar (2007): History of Medicine: Sushruta the Clinician- Teacher par Excellence, *Indian Journal of Chest Diseases and Allied Sciences*, Delhi, 49., p. 243-244.

Chopra, Ananda S. (2003): Ayurveda, In Selin, Helaine. Medicine Across Cultures: *History and Practice of Medicine in Non-Western Cultures*, Norwell, MA: Kluwer Academic Publishers., p. 75-83.

वैद्य यादवजी त्रिकामजी आचार्य (1997), सुश्रुत संहिता, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 5/3.

वैद्य यादवजी त्रिकामजी आचार्य (1994), चरक संहिता, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 9/4.

Chopra, Ananda S. (2003): Ayurveda, In Selin, Helaine. Medicine Across Cultures: *History and Practice of Medicine in Non-Western Cultures*, Norwell, MA: Kluwer Academic Publishers, p. 75-83.

शास्त्री, रामकृष्ण (1997), अथर्ववेद संहिता, चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी, 9/8/1-21.

शास्त्री, रामकृष्ण (1997), अथर्ववेद संहिता, चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी, 5/25/1-3, 6/81/1-3, 6/17/1-4, 1/11/1-6, 6/110/1-3.

शास्त्री, रामकृष्ण (1997), अथर्ववेद संहिता, चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी, 4/6/1-8, 4/7/1-7, 7/88/1.

शास्त्री, रामकृष्ण (1997), अथर्ववेद संहिता, चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी, 3/7/5-7, 4/33, 6/22/24.

शास्त्री, रामकृष्ण (1997), अथर्ववेद संहिता, चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी, 4/4/8.

ऋषि, उमाशंकर शर्मा (2004), ऋक्-सूक्त-निकर:, चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी, 10/97.

शास्त्री, रामकृष्ण (1997), अथर्ववेद संहिता, चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी, 1/81/1-3.

सेठ सुमन (2001), दिव्य वनस्पतियाँ, वन्दना ऑफसेट प्रिन्टर्स, दिल्ली पृ० 55-85.

Tilak, J. C., M. Banerjee, H. Mohan, T. P. Devasagayam (2004):Antioxidant availability of turmeric in relation to its medical & culinary uses, Phytother Res. 18(10).

Millar, A. L. (1998): Botanical Influences on Cardiovascular Diseases: *Alternative Medicine Review* 3(6).

Sharma, A. K. (2003): Panchkarma Therapy in Ayurvedic Medicine: *Scientific Basis for Ayurvedic Therapies*, CRC Press.

Chilluveri Sudha Ashwin (2009): Role of Ayurveda in Contemporary Health Care System; First National Ayurveda Conference, Johannesburg., p. 5.

Underwood, E. Ashworth: Rhodes (2008): Medicine, History of Encyclopaedia Britanica.

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

ऋषि, उमाशंकर शर्मा (2004), *ऋक्-सूक्त-निकर:,* चौखम्भा पब्लिशर्स, वाराणसी ।

वैद्य यादवजी त्रिकामजी आचार्य (1994), *चरक संहिता,* चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी ।

वैद्य यादवजी त्रिकामजी आचार्य (1997), *सुश्रुत संहिता,* चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी ।

शास्त्री, रामकृष्ण (1997), *अथर्ववेद संहिता,* चौखम्भा ओरिएन्टालिया, वाराणसी ।

सायण भाष्य सहित (1933), *ऋग्वेद संहिता,* वैदिक संशोधन मण्डल, पूना ।

सेठ सुमन (2001), *दिव्य वनस्पतियाँ,* वन्दना ऑफसेट प्रिन्टर्स, दिल्ली ।

त्रिपाठी, ब्रह्मानन्द (2008), *चरक संहिता,* चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी ।

Articles on Internet

http//www. Pradeepchats.com/p-81:*ayurveda for women*; Dated 2.10.10.

Underwood, E. Ashworth: Rhodes (2008): Medicine, History of Encyclopaedia Britanica

www.ayurpedia.in. Chilluveri Sudha Ashwin (2009): *Role of Ayurveda in Contemporary Health Care System*; Dated 2.10.10

www.farmainfo.net.Herbal drugs GMP requirements-Shiv Majumdar

Journals

Chopra, Ananda S. (2003): Ayurveda, In Selin, Helaine. Medicine Across Cultures: *History and Practice of Medicine in Non-Western Cultures*, Norwell, MA: Kluwer Academic Publishers.

Dwivedi, Girish; Dwivedi, Shridhar (2007): History of Medicine: Sushruta the Clinician- Teacher par Excellence, *Indian Journal of Chest Diseases and Allied Sciences*, Delhi, 49.

Millar, A. L. (1998): Botanical Influences on Cardiovascular Diseases: *Alternative Medicine Review* 3(6).

Sharma, A. K. (2003): Panchkarma Therapy in Ayurvedic Medicine: *Scientific Basis for Ayurvedic Therapies*, CRC Press

Tilak, J. C., M. Banerjee, H. Mohan, T. P. Devasagayam (2004*): Antioxidant availability of turmeric in relation to its medical & culinary uses*, Phytother Res. 18(10).